wghr

भारत में मानव अधिकार

एक अवलोकन

Human Rights in India

AN OVERVIEW

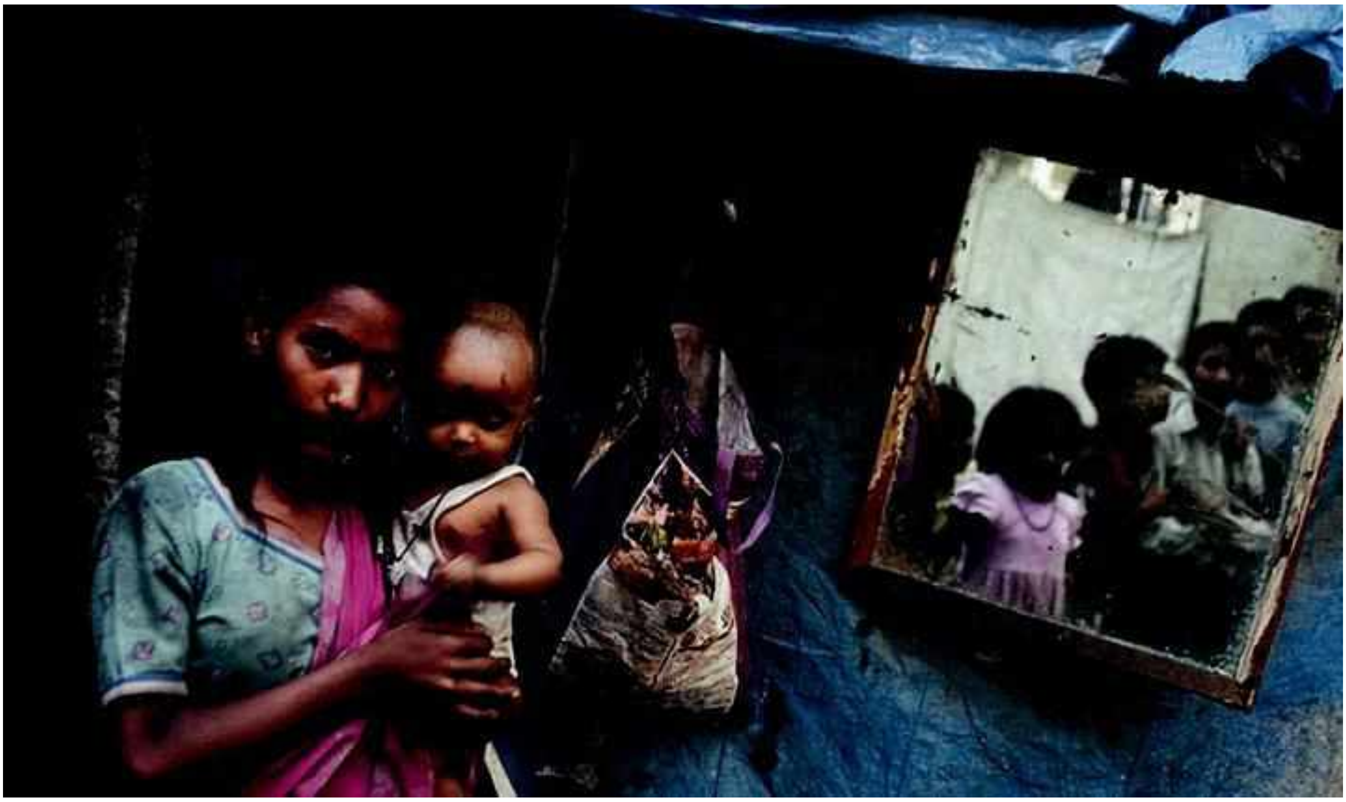

joint stakeholders' report

पणधारियों की साझा रपट

united nations

संयुक्त राष्ट्र

universal periodic review (upr)

सार्वभौमिक मियादी समीक्षा (यू.पी.आर.)

Submitted by the Working Group on Human Rights in India and the UN (WGHR)
भारत और संयुक्त राष्ट्र में मानव अधिकार पर वर्किंग ग्रुप द्वारा पेश/प्रस्तुत (डब्लू.जी.एच.आर.)

Published by (प्रकाशक)
wghr Working Group on Human Rights in India and the UN

परिचय

(प्रणाली और परामर्श प्रक्रिया क्या थी?)

1. यू.पी.आर. (सार्वभौमिक मियादी समीक्षा) के सम्बन्ध में डब्लू.जी.एच.आर. का काम भारत देश की दूसरी यू.पी.आर. (सार्वभौमिक मियादी समीक्षा) के पहले ही सन २००९ में प्रारंभ हुआ. भारत देश की दूसरी यू.पी.आर. (सार्वभौमिक मियादी समीक्षा) से सम्बंधित स्फारिशों को २०१२ में स्वीकारने के बाद के समयकाल में डब्लू.जी.एच.आर. कई कामों में सक्रीय रहा, जैसे कि इन सिफारिशों के क्रियान्वन को मॉनिटर करने का एक साधन तैयार करना, देश भर में सामूहिक संगोष्ठियों को सहयोग देना जिनमें विषयवार संगोष्ठियों के ज़रिये मध्यकालीन रपट को तैयार किया गया. **सन २०१५ में** डब्लू.जी.एच.आर. ने कोई पांच छेत्रीय संगोष्टियां और पांच राष्ट स्तरीय विषयवार संगोष्टियां आयोजित कीं, जिनमें लगभग २५० मानव अधिकार संगठन, नगरीय समाज संगठन, व्यक्तिगत कार्यकर्ता और मीडिया कार्यकर्ता शामिल हुए. इन संगोष्टियों में पहली और दूसरी सार्वभौमिक मियादी समीक्षा (यू.पी.आर) के दौरान भारत को दी गयी सिफारिशों के क्रियान्वन की प्रगति को मापने का काम किया गया. इस प्रक्रिया के ज़रिये यू .पी.आर. पहली और यू .पी.आर. दूसरी की सिफारिशों के क्रियान्वन पर “डब्लू.जी.एच.आर.सी.- भारत पणधारियों की साझा समीक्षा रपट २०१५” तैयार की गयी.

२. सन २०१६ के जुलाई और अगस्त माह में पूरे देश के कोई २० राज्यों में यू.पी.आर.-III पर राज्य स्तरीय संगोष्टियां आयोजित की गयीं थीं, जैसे कि, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, बिहार, तमिल नाडू, केरला, उत्तर-पूर्व के आठ राज्यों में, हरयाणा और उत्तर प्रदेश में. यह वृहद राज्य स्तरीय प्रक्रिया का समागम एक राष्ट्रीय संगोष्टी में हुआ, जो मानेसर, हरयाणा में आयोजित की गयी थी, जिसमें कोई ९० लोगों ने शिरकत की, जो विभिन्न राष्ट्रिय मानव् अधिकार संगठनों, विषय आधारित समन्वय संगठन, और मानव अधिकार के मुद्दों पर काम करने वाले स्वतंत्र विशेष्यग्य शामिल हुए. इस दौरान चर्चा, संवाद और साझा सहमति के आधार पर यू.पी.आर.–III नगरीय समाज पणधारियों की साझा रपट

तैयार की गयी जिसे २२ सितम्बर २०१६ के पहले ही संयुक्त राष्ट्र को सौंप दिया गया था.

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार – विकास और गरीबी

१. यू.पी.आर.-I सिफारिश क्रमांक १० और यू.पी.आर.-II सिफारिश क्रमांक १३४ के अनुसार, भारत ने सामाजिक-आर्थिक विषमताओं पर ध्यान केन्द्रित करने और अमीर और गरीब के बीच की दूरी को ख़तम करने के प्रति अपनी वचनबद्धता ज़ाहिर की थी. २०१५-१६ में ७.६ प्रतिशत प्रगति दर के साथ विश्व की सबसे तेज़-प्रगति करने वाली विशाल अर्थवयवस्था होने के बावजूद, २००४-०५ से २०११-१२ के सात वर्षों के दौरान गरिबी दर में २.१८ प्रतिशत अंक की औसतन गिरावट दर्ज की गयी थी.

2. सन' २०११-२०१२ में कुल जनसख्या का २९.६ प्रतिशत (३६.३ करोड़) लोग गरीब थे. भारत की आर्थिक नीति "वहिष्कार" को पनपाती है जिसके फलस्वरूप असामनता बढ़ती है, और शहरी और ग्रामीण इलाकों के बीच की खाई और चौड़ी होती जाती है.

३. अत्यधिक गरीबी और ग्रामीण दुर्गति से जूझने के लिए भारत को प्रति वर्ष कोई ६१.११ अरब अमरीकी डालर खर्च करने होंगे, जो उसकी सकल घरेलु उत्पाद का ३.७७ प्रतिशत है.

४. ग्रामीण गरीबी से जूझने वाले अधिकतर ग्रामीण कार्यक्रमों के खर्चों में भारी कमी हुई है, जैसे कि मनरेगा, जिसके कारण ग्रामीण गरीबों पर असर हुआ है.

उपयुक्त आवास और ज़मीन का अधिकार:

Rights to Adequate Housing and Land

1. यू.पी.आर.-I और यू.पी.आर.-II दोनों ही में आवास से सम्बंधित सिर्फ एक ही सिफारिश की गयी थी, लेकिन ज़मीन सम्बंधित कोई भी सिफारिश नहीं थी.
2. हालाँकि भारत ने तमाम योजनायें चालू की हैं, जिनमें "सन २०२२ तक सभी को आवास मिले" जैसी योजना शामिल है, फिर भी उपयुक्त आवास और ज़मीन के अधिकार को अमली जामा पहनाने में कोई महत्वपूर्ण प्रगति नहीं की गयी है, खासकर सबसे अधिक हाशिये पर खड़े लोगों के लिए. इसका मूल कारण है कि भारत आवास के अधिकार को मौलिक अधिकार नहीं मानता है, और ऐसी वृहत-आर्थिक प्रतिमान का अनुसरण कर रहा है जो आवासहीनता, बलपूर्वक उजाड़ने को, ज़मीन हथियाने या ज़मीन से बेदखल करने, और विस्थापन को बढ़ावा देता है.

3. भारत में विश्व के सबसे अधिक आवासहीन और भूमिहीन लोग निवास करते हैं. राष्ट्रिय स्तर पर शहरी इलाकों के लिए कोई एक करोड़ ८७ लाख ८० हज़ार और ग्रामीण इलाकों के लिए ४ करोड़ घरों की कमी थी; जो कम-आय वाले समूहों का ९६ प्रतिशत है. वहन करने योग्य आवास या सार्वजानिक आवास के अभाव में एक करोड़ ३७ लाख ५० हज़ार परिवार अपर्याप्त अधिवास/बस्तियों में बिना किसी बुनियादी सेवायों के जीवन बसर करते हैं.

4. ग्रामीण इलाकों में बड़े बांधों, उतखनन परियोजनाओं, सड़कें, बंदरगाह, और औद्योगिक गलियारों के कारण काफी विस्थापन है. सन १९४७ से ‘विकास’ परियोजनायों के कारण कम-से-कम ७ करोड़ लोग विस्थापित किया जा चुके हैं; इनमें से अधिकाँश पुनर्वासित नहीं हुए हैं. बलपूर्वक बेदखली के फलस्वरूप आजीविका, शिक्षा, स्वास्थ्य, बुनियादी सेवायों की उप्लाभ्त्ता और आमदनी का नुक्सान होता है. इनमें से कुछ-एक लोग जो पुनर्वास के ‘योग्य’ होते हैं, उनको ऐसे दूर-दराज़ के इलाकों में पुनर्वासित किया जाता है जहां बुनियादी सेवाएँ, आजीविका, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध ही नहीं है.

5. भू-स्वामित्व में बहुत ही ज़्यादा असमानता है. ५६ प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास बिलकुल भी ज़मीन नहीं है, जबकि ५ करोड़ ३७ लाख परिवार भूमिहीन मजदूर हैं. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन-जाति (जिनमें घुमंतू/अर्ध-घुमंतू/दिनोतिफ़िएद जन-जातियां शामिल हैं), और महिलाओं को भेद-भाव और घोर हिंसा का सामना करना पड़ता है, जब वे ज़मीन पर अपना अधिकार दर्ज करती हैं. इन हाशिये पर पड़े समूहों का घर-बार के लिए ज़मीन पर कोई अधिकार नहीं हैं.

6. आवास के लिए सभी उपायों में भेद-भाव व्यापक है, ख़ास कर धार्मिक और लेंगिक अल्पसंख्यक, और एकल महिलायें. जो बस्तियों में निवास करने वाले, बगान मजदूर, प्रवासी, यौन कर्मी, और विकलांग लोग आवास के अधिकार के हनन के शिकार हैं.

7. सन २००८ और सन २०१४ में, प्राकृतिक विपदाओं के कारण ३ करोड़ लोग विस्थापित हुए. विपदा-ग्रसित लोगों का देरी से/विफल/वहिष्कारिक पुनर्वास का मुद्दा एक गहन चिंता का विषय है.

8. समार्ट-शहरी मिशन के तहत सन २०२० तक कोई १०९ ‘स्मार्ट-शहरों’ के निर्माण की योजना है, जिसमें तकनीकि पहलू पर ज़्यादा जोर दिया गया है,

न कि सबको समाहित करने पर, और इसके द्वारा बेदखली और प्रिथ्करण/अलगाववाद को अधिक बढ़ावा मिलेगा.

सिफारिशें:

- आवास के अधिकार के लिए एक राष्ट्रीय कानून लागू करें, जो आवासहीनता और बेदखली एवं अलगाववाद और घेरेबंदी के खात्मे के प्रति समर्पित हो. प्रगतिशील कानूनों को लागू करें और ऐसी नीतियों/योजनाओं को अपनाएं जो मानव अधिकारों के ढांचे को सुनिश्चित करते हैं.

- एक राष्ट्रीय भूमि-सुधार कानून को लागू करें, जिसमें भूमिहीनों को भूमि, खासकर अनुसूचित जातियों/ अनूसूचित जन-जातियों और महिलाओं के लिए भूमि सुनिश्चित करें. घर-द्वार के अधिकार के लिए कानून लागू करें.

- बुनियादी सेवायों के निजीकरण को प्रताबंधित करने वाली वृहत-आर्थिक नीतियों की समीक्षा करें, और आवास, भूमि और संपत्ति में सट्टेबाजी पर कानूनी नियंत्रण सुनिश्चित करें.

- सी.ई.एस.सी.आर. (२००८) की सिफारिशों को लागू करें, जिनमें बेदखली पर स्पष्ट और निश्चित आंकड़े एकत्रित करें.

स्वस्थ्य का अधिकार:

Right to Health

१. एस.डी.जी. ३ में लोगों की खुशहाली और स्वास्थ्य में सुधार का आव्हान किया गया है. स्वास्थ्य के अधिकार को आई.सी.ई.एस.सी.आर. के अनुच्छेद १२ में दृढ़तापूर्वक सुनिश्चित किया गया है, और उसे भारतीय संविधान के अनुच्छेद २१ में दर्शाए गए स्वास्थ्य के अधिकार को सुरक्षित करने के भारत के संवैधानिक कर्त्तव्य के रूप में भी परिभाषित किया गया है. विशव

के ३० प्रतिशत गरीबों के बावजूद, स्वस्थ्य पर अपनी जेब से खर्च होने वाली राशि दुनिया भर में सबसे अधिक है. पिछले कुछ वर्षों में सार्वजनिक स्वास्थ्य बजट मात्र १.२ प्रतिशत पर ही टिका हुआ है.

२. सरकार की एक अहम् भूमिका के रूप में सार्वजनिक स्वास्थ्य वयवस्था के ज़रिये सेवा के प्रावधानों में कटौती और स्वास्थ्य सेवा को निजीकरण की दिशा में धकेलने की सोची-समझी निति को अपनाने के कारण स्वास्थ्य के अधिकार को सुरक्षित न करने में भारत की नाकाम रहा है.

३. संक्रामक रोगों जैसे कि तपेदिक, मलेरिया आदि अस्वस्थता-दर और मृत्यु-दर के लगातार मूल कारण बने हुए हैं, जबकि गैर-संक्रामक रोग जैसे कि मधु-मेह, उचरक्त्ताप और कैंसर आदि शहरी और ग्रामीण इलाकों में बढोत्तरी दर्शा रहे हैं जैसे-जैसे सार्वजानिक स्वस्थ्य-सेवा सबसे गरीब तक पहुँच पाने में असफल रही है.

४. हर साल गर्भकाल और जचकी से सम्बंधित कारणों से ४४,००० से अधिक महिलाएं म्रत्यु प्राप्त करती हैं. कमज़ोर वर्गों और बालिकाओं में माता-मृत्यु दर, एन.एम्.आर., आई.एम्. आर. और यू-५ मृत्यु दर अभी भी काफी अधिक हैं. मानसिक स्वस्थ्य सम्बन्धी समस्याओं पर प्रयाप्त ध्यान नहीं दिया जाता, और स्वास्थ्य बजट का मात्र एक प्रतिशत ही मानसिक स्वास्थ्य के लिए निर्धारित किया जाता है.

५. ट्रिप्स (**TRIPS**) [Trade-Related Aspects of Intellectual Property Rights] समझौते के तहत उत्पाद पेटेंट को अधिदेश किया था, और उसके साथ ही घरेलु कानूनों को लागू करने में लोच प्रदान की गयी थी ताकि गरीब के पक्ष में और सार्वजानिक स्वास्थ्य के प्रावधानों जैसे कि अनिवार्य लाइसेंस आदि को कानून बनाने में शामिल किया जा सके. इस प्रावधान का इस्तमाल आज तक नहीं किया गया गई जिसके चलते इनकी उपलब्धता को बढ़ावा मिल सके. भारत की नई बौद्धिक सम्पदा निति में सार्वजनिक स्वास्थ्य और हित को बढ़ावा देने के लिए बौद्धिक सम्पदा के इस्तमाल करने से हटकर बनी है, और इसमें बौद्धिक सम्पदा को अतिवादी दृष्टिकोण की ओरे ले जाने का प्रयास किया गया है. परंपरागत ज्ञान-विज्ञानं और परंपरागत संसाधनों की जैविक-लूट-खसोट को रोका जाना चाहिए.

सिफारिशें

- सार्वजनिक स्वास्थ्य बजट को बढाकर सकल घरेलु उत्पाद का पांच प्रतिशत कर दें, जिसमें प्राथमिक स्वस्थ्य सेवा में ठोस निवेश किया जाए.
- एक राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति के तहत सार्वजनिक स्वास्थ्य को संस्थागत स्तर पर बढ़ावा दें, जो व्यापक प्राथमिक स्वास्थ्य देख-रेख के सिद्धांत पर आधारित हो, जो स्वास्थ्य को मानव अधिकार और सामाजिक हित के रूप में देखती हो नकि शोषण-आधारित मुनाफे के लिए एक बाज़ारी वस्तु.

शिक्षा का अधिकार

Right to Education

१. बालको के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार का कानून , २००९, एक मील का पत्थर था जिसके तहत शिक्षा के उद्देश्य को हासिल करने की दिशा में कारगर कदम उठाये जाते थे , ऐसे जो विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रक्रियाओं में निहित हैं.

२. लेकिन, विभिन्न रपटें यह दर्शाती हैं कि ज़मीनी सच्चाई कुछ और ही है .

५

से १४ वर्ष की आयु के कोई १ करोड़ १ लाख २० हज़ार ऐसे कामगार बच्चे हैं, जो स्कूल नहीं जाते , जो बच्चे स्कूल जाते भी हैं उनमें से बहुत कम ही स्कूल शिक्षा पूरी करते हैं , राज्य द्वारा संचालित स्चूलों में केवल दस प्रतिशत ही शिक्षा के अधिकार का पालन करते हैं , तार्किक कारणों से

सरकारी स्कूल बंद किये जा रहे हैं, तनाव ग्रस्त राज्यों में जैसे कि जम्मू और काश्मीर, छत्तीसगढ़ में राज्य सरकार और गैर -सरकारी स्कूलों में कब्ज़ा और शिक्षा के अधिकार के कानून का उलंघन एक चुनौती बना हुआ है.

३. विकलांग बच्चे, एच.आई.वी./एड्स से ग्रसित बच्चे , घुमंतू, अर्ध-घुमंतू, और देनोतिफ़िएद जन -जातियों के बच्चे , एल.जी.बी.टी., क्यू. वर्गों के बच्चे , और दलित, आदिवासी, और मुस्लिम समुदाय के बच्चे सरकारी स्कूलों में व्यापक स्तर पर भेद-भाव का सामना करते हैं.

४. शिक्षा के अधिकार के कानून को लागू करने के लिए प्रयाप्त धनराशि की कमी लगातार बनी रही है , और शिक्षा पर सरकारी खर्च सकल घरेलु उत्पात का ३ .५ प्रतिशत से भी कम रहा है , जो उसके बाद की राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों में दर्शाए गए ६ प्रतिशत के वादे से कहीं कम है.

६. वर्तमान शिक्षा नीति जो समान्तर शिक्षा व्यवस्था को सही करार देती है, और जो मानव अधिकार शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल नहीं करती है, वह वर्तमान सामाजिक -आर्थिक विषमताओं , भेद-भाव, और हिंसा को ही पनपाती है.

□ सिफारिशें :

- मुफ्त व् अनिवार्य शिक्षा के मौलिक अधिकार कानून के दायरे को बढाकर ० से १८ वर्ष की आयु तक करना ताकि समान गुणवत्ता , सभी का समावेश और गैर-भेद-भाव को सुनिश्चित किया जा सके,
- मानव अधिकार शिक्षा पर एक राष्ट्रिय निति बनायीं जाए जो मानव अधिकार शिक्षा के विश्व कार्यक्रम के अनुरूप हो और जिससे सांस्कृतिक विविधता को बढ़ावा मिले; और पाठ्यक्रम में उम्र के अनुसार समुचित यौन शिक्षा शामिल की जाए.
- शिक्षा में भेद -भाव को मिटाने के लिए यूनेस्को कन्वेंशन का भारत को अनुमोदन करना चाहिए, और आम शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा देना चाहिए.

सैन्यकरण, सुरक्षा कानून और यातना:
Militarization, Security Laws and Torture

१. द्वन्द/ टकराव ग्रस्त इलाकों में परिस्थिति चुनौती पूर्ण बनी हुई है - खासकर काश्मीर, उत्तरी-पूर्वी राज्यों, और केन्द्रीय भारत के राज्यों में . जवाबी कार्यवाही करते हुए राज्य ने सुरक्षा बालों की तैनात करने में बढोतरी की है, और सैन्यकरण तेज़ किया है. उधाहरण के लिए, उत्तर-पूर्व में सेना ने नए सैनिक शिविर स्थापित किये हैं ; और काश्मीर में सैनिक मौजूदगी को बढा दिया है . छत्तीसगढ़ में सरकार ने स्वम -संचालित सतर्क समूहों को बढ़ावा दिया है , और स्थानीय आदिवासी जवानों को हथियार उपलब्ध कराने लगी है. लेकिन, सरकार लगातार यह दावा कर रही है कि भारत किसी तरह से भी अन्तराष्ट्रीय व् अंदरूनी हथियारबन्ध टकराव का सामना नहीं कर रहा है.

२. तक्राव्ग्रस्त इलाकों में सुरक्षा बलों के खिलाफ कई गंभीर शिकायतें दर्ज की जा रही हैं:

- बलात्कार और यौन हिंसा;
- बलपूर्वक गायब किया जाना;
- गैर-न्यायिक हत्याएं;
- मनमानी गिरफ्तारियां और हिरासतें;

- यातना;
- गैर-ज़रूरी, अनुपातहीन, और अधिक बल प्रयोग;

३. अन्य छेत्रों में भी यातना और गैर-न्यायिक हत्याओं की शिकायतें उभर रही हैं;

४. छत्तीसगढ़ में (२०१५-२०१६), आदिवासी महिलाओं के साथ बलात्कार और यौन हिंसा के तमाम मामले सामने आये हैं, और विद्रोह को कुचलने के नाम पर सुरक्षा बलों द्वारा मुठभेड़ों में हत्याओं में आनन-फानन इजाफा हुआ है.

५. काश्मीर घाटी में सन २०१६ में चहुँ ओर व्यापक जन प्रदर्शन की जवाबी कार्यवाही में सुरक्षा बलों द्वारा जीवन-नाशक हथियारों के इस्तेमाल से ७९ लोगों की मृत्यु हो गयी और १० हज़ार से भी अधिक लोग घायल हो गए. पेलेट गन्स (छर्रे वाली बंदूकों) के इस्तेमाल से गंभीर चोटें आई हैं, ख़ास कर आँखों की रौशनी जाना (अंधापन), जिनमें बच्चे भी शामिल हैं.

६. आफ्सपा को नागालैंड (२०१६) और मणिपुर (२०१५) में भी लागू कर दिया गया है. असाम की सीमा से लगे अरुणाचल प्रदेश में भी इसे लागू कर दिया गया है. ऐसी रपट आने के बावजूद कि आफ्सपा को त्रिपुरा से हटा लिया गया है, इस बावत कोई भी नोटिस जारी नहीं किया गया है, और नही गैर-सैन्यकरण किया गया है.

७. ऐसे पत्रकार, वकील, शोधकर्ता, और कार्यकर्ताओं को फर्जी अपराधिक मामलों में फंसाकर निशाना बनाया जा रहा है, जो टकराव वाले इलाकों में मानव अधिकार उलंघन को उजागर करते हैं.

८. इन टकराव वाले इलाकों में तमाम सुरक्षा कानून (केन्द्रीय और राज्य द्वारा) लागू किये जाते हैं. इनमें से कई तो पूरे देश में लागू हैं. अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय संस्थानों और संघों ने इनकी वापसी या पुनरवलोकन की सिफारिश

की है, यह दर्शाते हुए कि आफ्सपा जैसे कानून सुरक्षा बलों को बहुत ही व्यापक और मनमाने शक्तियां प्रदान करते हैं.

९. बहुत ही ब्यापक आतंक-विरोधी कानूनों के तहत धार्मिक अल्पसंख्यक भी गलत और द्वेषपूर्ण कार्यवाई का सामना करते हैं.

१०. जो लोग अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं के समीप रहते हैं, जैसे कि भारत-बांग्लादेश सीमा, वे सीमा सुरक्षा बलों द्वारा यातना और गैर-न्यायायिक हत्याओं के शिकार होते हैं.

११. बहुत से लोग विचारहीन कैदी के रूप में लम्बी अवधि के लिए हिरासत में रहते हैं, और आखिर में मुकदमा ख़त्म होने पर व् निर्दोष पाए जाते हैं.

१२. कई मामलों में, सुरक्षा कानून के तहत कार्यपालिका द्वारा मंज़ूरी की ज़रुरत होती है यदि किसी सुरक्षा बल के सदस्य के खिलाफ सिविल अदालत में मुकदमा चलाना हो. यदि मंज़ूरी मिलती भी है तो कभी-कदार.

१३. सैनिक बलों के लिए बनाये गए कानूनों में सुरक्षाकर्मी द्वारा मानव अधिकार के उलंघन का मुकदमा सैनिक अदालत में चलता है नकि सिविल अदालत में, जिससे सजामाफी को और भी मजबूती मिलती है. राष्ट्रिय मानव अधिकार आयोग को भी सैनिक बालों के खिलाफ शिकायत की जांच का अधिकार नहीं है.

□ **सिफारिशें:**

- सशस्त्र बल विशेष शक्तियां अधिनियम 1958 [Armed Forces (Special Powers) Act 1958] और अन्य सुरक्षा कानूनों को रद्द करो.

- यह सुनिश्चित करें कि मानव अधिकार के उलंघन के सभी आरोपों की त्वरित और स्वतंत्र जांच हो, और कि ऐसे अभियुक्तों का मुकदमा सिविल अदालतों में चले, और पीड़ित जन और उनके परिवारों को राहत मिले.

- पेलेट बंदूकों के उपयोग को बंद करो

- यातना के खिलाफ कन्वेंशन को अनुमोदित करो

- बलपूर्वक गुम किये जाने, और उसके अपराधीकरण के खिलाफ संधि को अनुमोदित करो

न्याय मिलने की सम्भावना:

Access to Justice:

Barriers to Access to Justice

न्याय मिलने की सम्भावना में बाधाएं:

(गैर-सुधारे कानून, पुलिस द्वारा मानव अधिकारों का उलंघन, पुलिस सुधर और कानूनी सहायता)

१. न्याय पाने की सम्भावना अभी भी संसाधनों की कमी से ग्रसित है, और कई लोगों के लिए न्याय पाना एक दिव्यस्वप्न जैसा है. उच्च अदालतों में प्रत्येक तीसरा पारित पद, और निचली अदालतों में प्रत्येक चौथा पारित पद खाली हैं. अदालतों में अभी भी कोई १ करोड़ २५ लाख प्रकरण लंबित हैं, और उनकी संख्या दिनों-दिन बढ़ रही है. कुल बंदियों में से ६८ प्रतिशत विचाराधीन कैदी हैं, और कई तो बिना किसी सज़ा के. पुलिस कर्मियों में २४ प्रतिशत पद खाली हैं, और बंदिग्रहों में ३४ प्रतिशत कर्मियों की कमी है.

२. महिलाओं, कमज़ोर वर्गों, और जो लोग टकराव में फंसे हैं, उनके लिए न्याय पाना खासकर समस्याओं से भरा है. शुरुआत में ही, यौन सम्बंधित अपराधों की शिकायतें दर्ज करने के लिए महिला पुलिस न होने से और भी देरी होती है.

३. पुलिस और बंदीगृह में पारदर्शिता लाने में सूचना का अधिकार कानून, २००५ (आर.टी.आई. कानून) काफी मददगार साबित हुआ है, लेकिन, आर.टी.आई. कानून की धारा ४(१) (ब) को कानूनी जामा पहनाने में गरीबों को असामनता का सामना करना पड़ता है.

४. सन १८०० में बने कानूनों के तहत अभी भी पुलिस और बंदीगृह की व्यवस्था काम करती है. सरकार द्वारा पुलिस और बंदीगृह के लिए तात्कालिक सुधारे गए मॉडल कानूनों को नज़रंदाज़ किया जाता है. सन २०११ में गृह मंत्रालय द्वारा सलाह के आधार पर पूरे देश में गैर-प्रशासनिक आगंतुकों की नियुक्ति की जानी है, लेकिन केवल एक प्रतिशत बंदीगृह के आगंतुक मंडलों पर इनकी नियुक्ति की गयी है.

५. हिरासत में यातना, गैर-कानूनी गिरफ्तारियां, यौन हिंसा, हिरासत में मौत और गैर-न्यायायिक हत्याएं जिनपर कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया जाता, इन सब के बारे में अक्सर रपटें मिलती हैं.

6. सन २००६ में सर्वोच्च न्यायलय द्वारा पुलिस सुधार और एक पुलिस शिकायत अधिकारी (पी.सी.ए.) गठित करने पर दिशा-निर्देश को लगातार नज़रंदाज़ किया जा रहा है. सन २००६ केवल १७ प्रान्तों ने नए पुलिस कानून पारित किये हैं, और आज तक केवल ९ पी.सी.ए. कार्यशील हैं.

7. कानूनी ढांचे के बावजूद, मुफ्त कानून सहायता सेवाओं पर जानकारी की कमी, वकीलों के कर्तव्यों, और मुवक्किलों के अधिकारों; जवाबदेही पर पूरी तौर पर कमी; कारगर कानूनी प्रातिनिधत्व के मापदंडों को लागू न करना; न्यायिक हिरासत में लोगों को सेवा देने से सम्बंधित प्रावधानों पर राष्ट्रीय कानूनी सेवा अधिकार (एन.ए.एल.एस.ए.) और राज्य कानूनी सेवा अधिकार के बीच की खाई; और पुलिस थानों में अपर्याप्त कानूनी सेवाएँ; लगातार बनी हुई हैं. भारत में सर्वोच्च न्यायालय के दिशा-निर्देश के बावजूद भारत में गवाहों की सुरक्षा के लिए न तो कोई कानून है और न ही कोई योजना.

सिफारिशें:

- सन २०११ में गृह मंत्रालय द्वारा सलाह पर अमल करते हुए देश के सभी प्रान्तों की सभी जेलों में गैर -प्रशासनिक आगंतुक मंडलों के गठन को सुनिश्चित किया जाना चाहिये, और सन २०१५ में गृह मंत्रालय की सलाह के आधार पर सभी बंदिग्रहों में गैर-ज़रूरी पाबंदियों को हटा देना चाहिए, और हरेक बंदीगृह में कानूनी सहायता क्लिनिक्स स्थापित की जानी चाहिए.
- यह सुनिश्चित करें कि पुलिस और न्यायायिक हिरासत में लोगों को त्वरित कानूनी सेवा मिलने के लिए राष्ट्रीय कानूनी सेवाओं अधिकार द्वारा दिश-निर्देश किये जाएँ.

म्रत्युदंड:

Death Penalty

१. याकूब मेमन (२०१५), अफ़ज़ल गुरु (२०१३) और अजमल कसाब (२०१२) को फांसी पर लटकाकर भारत ने अघोषित प्रतिबन्ध को भंग कर

दिया जो सन २००४ में धनञ्जय चटर्जी को फांसी की सज़ा के बाद लगी थी. सन २०१२ के बाद बने सभी कानूनों में म्रत्युदंड को और भी मजबूती प्रदान की गयी है. उदाहरण के लिए २०१३ में अपराधिक कानून संसोधन कानून में बलात्कार के कई मामलों में मृत्युदंड को एक संभावित सज़ा के रूप में शामिल किया गया है.

२. भारत के विधि आयोग ने सन २०१५ में अपनी रपट में मृत्युदंड पर अपनी सिफारिश देते हुए कहा है कि "सभी अपराधों के लिए मृत्युदंड को ख़तम कर देना चाहिए केवल आतंक संम्बन्धी और युद्ध छेड़ने के अपराधों को छोड़कर."

३. फरवरी २०१४ में, सर्वोच्च न्यायालय ने मृत्युदंड को अमल करने में बेवजह देरी को एक कारण दर्शाते हुए, कई मामलों में मृत्यदंड को आजीवन कारावास में तब्दील कर दिया था. सर्वोच्च न्यायालय ने मृत्युदंड के बंदियों के अधिकारों को सुरक्षित करते हुए दिशा-निर्देश भी जारी किये थे.

४. यू. पी.आर. II चक्र में भारत को दी गयी तमाम सिफारिशों के बावजूद, भारत ने किसी भी सिफारिश को मंज़ूर नहीं किया और किसी भी अंतर्राष्ट्रीय विलंबन या प्रस्ताव पर अमल किया जिसके तहत म्रत्युदंड को समाप्त कर देना है.

५. नागरिक और राजनैतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय परिसंविदा (आई. सी.सी.पी. आर.) पर भारत एक पार्टी है, जिसके तहत म्रत्युदंड को समाप्त करने की दिशा में कारगर कदम उठाने हैं. सन २०१४ में, भारत ने ३७ अन्य देशों के साथ मिलकर, संयुक्त राष्ट्र की आम सभा में म्रत्युदंड के विलंबन की मांग पर एक प्रस्ताव के खिलाफ वोट दिया था.

सिफारिशें:

- नागरिक और राजनैतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय परिसंविदा (आई. सी.सी.पी. आर.) के दूसरे ऑप्शनल प्रोटोकॉल पर भारत को हस्ताक्षर

करना चाहिए, जो म्रत्युदंड को समाप्त करने की दिशा में है, और संयुक्त राष्ट्र के आव्हान को अनुमोदित करना चाहिए जो म्रत्युदंड के उपयोग पर या म्रत्युदंड समाप्त करने पर विश्वव्यापी अधिकारिक विलंबन के लिए है.

एल.जी.बी.टी.आई. – यौन सम्बंधित रूचि एंड जेंडर पहचान के आधार पर गैर-भेद-भाव :

LGBTI – non-discrimination on grounds of sexual orientation and gender identity

१. सन २००९ में, अपने एक ऐतिहासिक फैसले में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा ३७७ को गैर-संवैधानिक घोषित किया था, जिसके चलते सम-लैंगिक रिश्ते गैर-अपराधिक हो गए थे. अपील में सार्वोच्च न्यायालय ने सन २०१३ में सुरेश कुमार कौशल बनाम नाज़ फाउंडेशन के प्रकरण में इस फैसले को पलट दिया था, और एल.जी.बी.टी. जीवन को फिर से अपराधिक घोषित कर दिया. इस फैसले ने संसद को इस कानून को रद्द करने का मौका भी दिया, अगर वह ऐसा करना चाहे तो. सम-लैंगिक संबंधों को एक बार फिर अपराध के दायरे में लाने से, इस कानून का मनमाने तरीके से इस्तेमाल, ब्लैकमेल और यौन हिंसा आदि में इजाफा हुआ है, वह भी कानून को लागू करने के नाम पर. इसके साथ ही समाज में होमोफोबिया भी बढ़ा है.

२. सम-लैंगिक रिश्तों को फिर से अपराधिक श्रेणी में लाने के तत्काल बाद, सर्वोच्च न्यायालय ने **नालसा बनाम भारत सरकार** के प्रकरण में सन २०१३ में, ट्रांस लोगों की समानता को मान्यता दी कि लोगों को अपना लिंग को स्वम तय करने का अधिकार है, और ट्रांस लोगों के प्रति राज्य के उन कर्तव्यों को भी निर्धारित किया जो उनके कल्याण और

सुरक्षा से सम्बंधित हैं, जिसमें सकारात्मक कदम भी शामिल हैं (संविधान के आधार पर अन्य पिछड़ा वर्गों की श्रेणी में शामिल कर). नालसा के फैसले में सामाजिक-आर्थिक अधिकारों की मान्यता और सुरेश कुमार कौशल में राज्य के कर्तव्यों में मनमाने तौर से अभिव्यक्ति, मानव गरिमा और आज़ादी के अधिकार नकारने के बीच विरोधाभास है.

३. केन्द्रीय सरकार ने ट्रांसजेंडर पर्सन्स प्रटेक्शन ऑफ़ राइट्स बिल, २०१६ को सदन में पेश किया है, जो ट्रांस लोगों पर सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के प्रतिकूल है. यह बिल लिंग/जेंडर पहचान पर आत्म-निर्णय के अधिकार को नकारता है, बल्कि उसे रोग्विकृति के दायरे में लाता है. भारत के अंतर-लैंगिक नागरिकों के अधिकारों के विषय पर गंभीर संबोधन की ज़रुरत है, और अंतर-लैंगिक बच्चों के शरीरों पर अनावश्यक रूप से मेडिकल सर्जरी द्वारा हस्तक्छेप करने पर भी लगाम लगाने की आवशयकता है. समलैंगिक महिलाओं के खिलाफ हिंसा का मुद्दा अभी भी एक ऐसा अपराध है जिसकी रपट को दबाया जाता है. सामाजिक दबाव के चलते बहु-लैंगिक पुरुषों के साथ बलपूर्वक शादियों का अंजाम अक्सर आत्महत्या ही होता है.

सिफारिशें

- भारतीय दंड संहिता की धारा ३७७ को रद्द करें, और एल.जी.बी.टी.आई. लोगों को भारत के पूर्ण नागरिक होने की मान्यता प्रदान करें.
- सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नालसा बनाम भारतीय संघ के फैसले के अनुरूप अंतर-लैंगिक समुदाय के अधिकारों की सुरक्षा के लिए एक कानून लागू करिएँ.

बच्चे

Children

१. यू.पी.आर. – दूसरी से आज तक भारत में बच्चों की दशा और स्थिति में कोई अर्थपूर्ण प्रगति नहीं दिखाई देती है. बच्चों के अधिकारों के लिए बनाए गए अनिवार्य मापदंडों में असमान्य प्रवृतियां नज़र आती हैं, जैसे कि बच्चों के लैंगिक अनुपात, पांच वर्ष से काम आयु के और शिशु मृत्यु दर (इसमें सुधार तो ज़रु हुआ है लेकिन एम्.जी.डी. लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया है), पैदा होने पर पंजीयन की स्थिति, शिक्षा, बच्चों के खिलाफ अपराध, शारीरिक सजा, बाल श्रम, बाल विवाह आदि.

२. सरकार अभी भी यू.एन.सी.आर.सी. के अनुच्छेद ३२ पर अपनी शर्तों/आरक्षण पर अड़ी हुई है, और बाल श्रम पर नया कानून बहुत लचर है, और खामियों से परिपूर्ण है.

३. जुवेनाइल जस्टिस (केयर एंड प्रोटेक्शन) कानून में एक प्रतिगामी प्रावधान शामिल
किया गया है जो १६ से १८ वर्ष की आयु के लोगों को गंभीर अपराधों के लिए अपराधिक न्याय प्रणाली में शामिल करने के लिए छूट देता है, और जिसके फलस्वरूप बच्चों के मामलों में मापदंडों में गिरावट हुई है, जो कानून के विपरीत है.

४. बच्चों की तस्करी आज भी भारत में व्यापक स्तर पर पायी जाती है. कारगर और सक्षम प्रक्रिया के अभाव में और लचर पालन के चलते, एक आज भी एक मुख्य मानव अधिकारों का हनन है.

५. हालाँकि राष्ट्रिय स्तर पर इसे फाइनेंस बिल में शामिल किया गया है, फिर भी आम टिपण्णी क्रमांक १९ के अनुरूप बच्चों की बजट ज़रूरतों को पूरे देश में अपनाना होगा. मान्यता के बावजूद, बचों का बजट अप्राप्त है जो कुल राष्ट्रीय बजट का ५ प्रतिशत से भी कम है, और इसमें लगातार कमी आ रही है. दुर्बल/कमज़ोर बच्चों का एक बड़ा तबका उपलब्धता, भेद-भाव, लचर पालन और वित्तीय संसाधनों की कमी की समस्याओं से पीड़ित रहता है.

- **सिफारिशें :**

- वर्तमान " किशोर न्याय (बच्चों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम 2015" [Juvenile Justice (Care and Protection) Act 2015] की समीक्षा कर उसे भारतीय संविधान, यू.एन.सी.आर.सी. और आम टिपण्णी क्रमांक १० के सिधान्तों के समरूप बनाना चाहिए.

- बच्चों के अधिकारों को हासिल करने सार्वजनिक बजट बनाने में आम तिपानी क्रमांक १९ को अभिकरण करने के फलस्वरूप, भारत सरकार को इन्हें दिशा-निर्देश के रूप में इस्तमाल करते हुए सभी मापदंडों का पुनर्परीक्षण कर उनमें सुधार लाना चाहिए.

- एस.डी.जी. लक्ष्य ५ को आगे ले जाते हुए, भारत सरकार को सभी स्तर पर जेंडर समानता और गैर-भेदभाव को सुनिश्चित करने के लिए प्रयाप्त कदम उठाने चाहिए.

दलित अधिकार

DALIT RIGHTS

१. भारत में जातिगत भेद-भाव के चलते अंतर-पीढ़ी गरीबी (पीढ़ी-दर-पीढ़ी) पैदा करती है, जहाँ अनूचूचित जातियों को ज़्यादातर पुश्तैनी, कम-आमदनी वाले रोज़गार, और खेतीयोग्य भूमि और ऋण की उपलब्धता से वंचित होना, काफी बड़े स्तर की उधारी से जूझना, और आमदनी वाली परिसंपति के अभाव में श्रम-बन्धुआई आदि के चलते एक सीमित दायरे में बाँध दिया जाता है.

२. इस भेद-भाव को शिक्षा के ढांचों में बहुत गहराई तक देखा जा सकता है, जो दलितों में बेढंगी साक्षरता, भरती और छंटनी दर, स्वास्थ्य सेवाएं मिलने में व्यवधान, और घातक तौर पर असर डालने स्वास्थ्य मापदंडों में प्रकट होते हैं .

३. सुरक्षा उपायों और संस्थागत व्यवस्थाओं के बावजूद बुनियादी मौलिक अधिकारों से व्यवस्थित तौर पर वंचित रखा जाता है.

४. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन-जाति (अत्याचार रोकने) संशोधन कानून, २०१५ और पी.सी.आर. अधिकारों के लचर कार्यान्वन के चलते दंडमुक्ति लगातार जारी है.

५. ख़ास तौर पर दलित महिलाएं ही न्याय, सार्वजनिक नीति और सेवाओं से वंचित रहती हैं, और घातक हिंसा की शिकार होती हैं.

६. इसके अलावा, अनियत दिहाड़ी मजदूरों का एक बड़ा तबका दलित समुदाय है, और सकारात्मक कदमों के बावजूद संगठित मजदूर बल में सीमित प्रवेश की ही संभावना रखता है.

७. एस.सी.एस.पी. जैसे नीतिगत उपायों को कारगर तरीके से लागू नहीं किया जाता है.

८. दलित काफी नाज़ुक तौर पर कमज़ोर हैं, और राहत, प्रतिक्रिया और पुनर्वास प्रक्रियाओं में भेद-भाव जारी है. विपत्ति प्रबंधन प्रक्रियाएं जातियों के सम्बन्ध में अंधे जैसी हैं, और सरकारी नीतियाँ दलितों द्वारा बहुत तरह की दुर्बलताओं के अनुभवों को देखने-समझने और उन पर उचित कार्यवाही करने में विफल रही हैं.

९. बलवान जातियों द्वारा उन पर ढाहे जाने वाले तमाम अत्याचारों के बावजूद, दलितों में अपने नागरिक अधिकारों को बलपूर्वक निश्चित करने की भावना प्रबल होती जा रही है.

- **सिफारिशें :**

  - अनूसूचित जाति/अनूसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधित कानून २०१५ की निगरानी और कारगर क्रियान्वन सुनिश्चित करने के लिए प्राप्त उपाय करना.
  - दलित समुदाय के विकास के लिए आनुपातिक बजट आबंटित करना और अनूसूचित जाति उप-योजना पर एक व्यापक कानून बनाना.
  - रोहित कानून, २०१६ को बनाना, लागू करना और उस पर निगरानी रखना.

आदिवासी अधिकार

Tribal Rights

१. भारत में आदिवासी समुदायों द्वारा व्यापक स्तर पर संवैधानिक गारंटी और सुरक्षात्मक कानूनों के उल्लंघन का सामना करता पड़ता है, जैसे कि अनूसूचित छेत्रों के लिए पंचायती राज एक्सटेंशन (पैसा), कानून, १९९६ और अनूसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासियों (वन अधिकारों की मान्यता) कानून, २००६.

२. संविधान द्वारा पांचवी अनुसूची छेत्रों में "शांति और सवा-शासन" को सुनिश्चित करने राज्य के राज्यपालों को ज़िम्मेदारी सौंपी गयी है. लेकिन, राज्यपालों द्वारा इन प्रावधानों को लागू करने में अपने संवैधानिक कर्तव्यों को नकारा गया है.

३. "ज़मीन के बदले ज़मीन" आधारित पुनर्वास के बिना ही राज्य द्वारा भूमि अधिग्रहण किये जाने से विकास के चलते विस्थापन हो रहा है. केवल उत्तरी-पूर्वी भारत में ही आदिवासी लोगों के अधिकारों की मान्यता को नज़रंदाज़ करते हुए अभी भी २०० से भी अधिक बड़े बांधों को बनाने का पीछा किया जा रहा है. इसी तरह से कोई ३० मुख्य, १३५ मझोले, और ३००० लघु बांधों के निर्माण को आनुमति प्रदान कर दी गयी है, जिनमें मध्य प्रदेश में सरदार सरोवर बाँध की ऊंचाई बढ़ाना भी शामिल है. इन बांधों में पहले से ही आदिवासियों की कृषि-भूमि, जंगल और दलदली भूमि डुबान में आ चुके हैं. वन अधिकार कानून का क्रियान्वन बहुत ही लचर रहा है, अक्सर तो इसके सशक्तिकरण के प्रावधानों के विपरीत.

४. पर्यावरण और वन मंत्रालय द्वारा कई कानूनों, नीतियों और परियोजनायों के क्रियान्वन से सुरक्षात्मक कानूनों जैसे कि वन अधिकार कानून, पैसा आदि के धार को भोथरा कर दिया जाता है और आदिवासिओं के अधिकारों का हनन होता है.

- सिफारिशें:

- सुरक्षात्मक कानूनों, पैसा और वन अधिकार कानूनों के कारगर क्रियान्वन को सुनिश्चित करें.
- विभिन्न कानूनों में जिन लोगों और ग्राम संस्थानों को अधिकृत किया गया हो उनकी अनुमति से ही कानूनी भूमि-अधिग्रहण सुनिश्चित करें.
- आदिवासिओं के विकास अधिकारों पर केन्द्रित आदिवासी उप-योजना के कारगर क्रियान्वन को सुनिश्चित करने कानून बनाएं.
- भारत सरकार को अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की आदिवासी लोगों पर बनी कन्वेंशन क्रमांक १६९ का अनुमोदन करना चाहिए.

अशक्त जन

Persons with Disabilities

1. सन २०११ की जनगर्णा में भारत में अशक्त जनों के असली गिनती नहीं मिलती. विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व जनसँख्या का १५ प्रतिशत अशक्त जनों का है, और इसके विपरीत भारत की जनगर्णा में इसे केवल २.२१ प्रतिशत ही दर्शाया गया है. भारत अपने सकल घरेलु उत्पात (जी.डी.पी.) का मात्र एक नगण्य हिस्सा याने कि ०.०००९ प्रतिशत ही अशक्त लोगों पर व्यय करता है, जो जनसँख्या के समानुपात नहीं है.
2. यू.एन.सी.आर.पी.डी. पर भारत ने सन २००७ में ही हस्ताक्षर कर अनुमोदित कर दिया था, जिसके अनुसार वह घरेलु कानूनों में सुधार लाने के लिए बाध्य था, और उसे चार अशक्त-विशेष कानूनों को इस कन्वेंशन के प्रावधानों के अनुरूप बनाना था. भारत का अशक्त लोगों के अधिकारों का बिल २०१४ काफी खामियों से भरा हुआ है. भारत के संविधान के तहत भेद-भाव मिटाने वाले प्रावधानों में अशक्तता आधारित भेद-भाव को सीधा-सीधा प्रताबंधित नहीं किया गया है. अशक्त व्यक्ति हाशिये पर धकेला हुआ सबसे अधिक कमज़ोर व्यक्ति है. भारत में तमाम ऐसे कानून हैं जो अशक्त व्यक्ति को व्याह करने,उत्तराधिकारी बनने, वोट देने के अयोग्य

मानते हैं, और खासकर मनोवाज्ञानिक और संज्ञानात्मक अशक्तता के लोगों को कानूनी पद से वंचित रखते हैं.

3. अशक्त लोगों पर १९९५ में बनाये गए कानून और अन्य अशक्त- विशेष कानूनों के तहत जो भी सीमित अधिकार सुनिश्चित किये गए हैं, उन्हें भी पूरी तौर से किर्यान्वित नहीं किया गया है. सन २०११ की   जनगड़ना में चिन्हित अशक्त लोगों में से केवल ४९.५० प्रतिशत को ही अशक्त प्रमाण पत्र प्रदान किया गया है.राष्ट्रीय अपराध रिकाड्र्स ब्यूरो द्वारा अशक्त महिलाओं पर होने वाले यौन हमलों का आंकड़ा नहीं रखा जाता. कई कानून तो अशक्त लोगों को चुनाव लड़ने से प्रतिबंधित करते हैं, जैसे कि कई राज्यों के पंचायती राज कानून.
4. मुख्य-आयुक्त के ऑफिस और अन्य राज्य आयुक्त दोषियों को सज़ा देने में सक्षम नहीं हैं.

□ सिफारिशें:

- कानूनों को संशोधित कर अशक्त लोगों की अधिकारों पर बनी संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन (सी.आर.पी.डी.) का अनुपालन सुनिश्चित करें.
- यह सुनिश्चचित करें कि सार्वजनिक जगहों में जिनमें निजी मिलकियत वाले सार्वजनिक तौर पर इस्तमाल किये जाने वाली सुविधायों की जगह, सेवाएं और यातायात के दायित्व समय-सीमा में लागू किये जाएँ.

धार्मिक अल्पसंख्यक

Religious Minorities

सन २०१२ में दूसरी यू.पी.आर. के बाद से भारत में धार्मिक अल्पसंख्यकों की स्थिति में गिरावट आई है. फरवरी २०१४ में भारत के गृह मंत्रालय द्वारा जो आंकड़े जारी किये गए उनमें दर्शाया गया है कि सन २०१२ की तुलना में सांप्रदायिक दंगो की घटनाओं में बहुत तेज़ी से ३० प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है.

सितम्बर २०१३ में उत्तर प्रदेश में मुसलमानों के खिलाफ बड़े पैमाने पर निशाना साध कर हिंसा में स्पष्ट नज़र आता है.....आरोहण हमले जिनमें शारीरिक हमले, मार-काट, गोमास का उन्माद फैलकर हत्या, प्रेम जिहाद, 'घर वापसी' और राष्ट्रभक्ति के झूटी परीक्षा का शामिल हैं.

2. गोमांस के भोग और व्यापार के नाम पर, प्रसुप्त पड़े गो-रक्षा कानूनों का उपयोग कर, अल्पसंख्यकों पर हमले मुसलामानों और दलितों की आजीविका पर भी हमले हैं. देश भर में मुसलामानों की इबादत की जगहों, और पादरियों और इसाई समुदाय के गिरजाघरों पर भी भीड़-हिंसा के ज़रिये निशाना साधन राज्य द्वारा दंडमुक्ति एक आम बात रही.दक्षिण पंथी संगठनों के हथियारबंद गिरोहों द्वारा हथियारों के प्रशिक्षण शिविरों के आयोजनों ने धार्मिक अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए और भी खतरा पैदा किया.

3. जहाँ भी अल्पसंख्यक पीड़ित पार्टी रही, उन अपराधिक प्रकरणों को हीला-हवाला कर उन्हीं ख़तम कर दिया गया. संविधान के अनुच्छेद ३४१ के अंक (iii) को जारी रखने से करोड़ों दलितों के ईमान और विशवास की आज़ादी के अधिकारों से कारगर तरीके से वंचित रखा गया. भारत के तमाम राज्यों द्वारा धर्म-परिवर्तन विरोधी कानूनों के लागू होने से धार्मिक अल्पसंख्यकों में असुरक्षा की भावना और भी बलवंत हुई है. भारत में धार्मिक अल्पसंख्यकों के जवानों को, मुसलमान और इसाई दोनों, आतंक से सम्बंधित प्रकरणों में झूटे ही फंसाया जाता है, और उनसे बरी होने के बात न तो उन्हें किसी भी तरह का छतिपूर्ति मिलती है और न ही कानून लागू करने वालों को इस तरह के गलत या द्वेषपूर्ण अभियोजन के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जाता है.

सिफारिशें:

- सांप्रदायिक और लक्षित हिंसा रोकथाम विधेयक(न्याय एवं क्षतिपूर्ति) 2011 [Prevention of Communal and Targeted Violence (Access to Justice and Reparations) Bill, 2013] को लागू

करें जिसे दिसम्बर २०१३ में ही भारतीय मंत्रिमंडल की स्वीकृति मिली थी.

- आतंक सम्बन्धी प्रकरणों में बरी होने वाले सभी व्यक्तियों की सम्मानजनक छतिपूर्ति हेतु एक राष्ट्रीय निति बनाएं.

शरणार्थी

Refugees

१. भारत में १,८७,४८२ शरणार्थी हैं और ३,७८४ शरण चाहने वाले, जिन्हें भारत सरकार और संयुक्त राष्ट्र के शरणार्थी आयुक्त द्वारा सीधा सहयोग प्रदान किया जाता है. "नई दिल्ली में संयुक्त राष्ट्र के शरणार्थी उच्च आयुक्त के दफ्तर में कोई २३,५०० शरणार्थी और शरण चाहने वाले पंजीकृत हैं, जिनमें ११,०० से ज्यादा बर्मा से, ९,००० अफगानी, और ७,००० तिब्बती हैं. सन २०१२ के बाद से भारत में म्यांमार से एक अनुमानित आंकड़ों के हिसाब से कोई ५,५०० रोहिंग्या मुसलमान शरणार्थियों का एक तेज़ रेला आता देखा गया है.

2. भारत ने आज तक शरणार्थियों की स्थिति पर १९५१ की कन्वेंशन और उसके प्रोटोकॉल की अभिपुष्टि नहीं की है, और न ही इसके पास शरणार्थियों के सुशासन हेतु कोई भी राष्ट्रीय व्यवस्था या कानूनी प्रक्रिया मौजूद है. शरणार्थियों से महज़ विदेशियों के रूप में व्यवहार किया जाता है जैसा कि प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा तय किया जाता है. विदेशियों का कानून १९४६ (अधिनियम) और विदेशियों का आदेश सन १९४८ (आर्डर) के तहत किसी भी "विदेशी" से व्यवहार करने के लिए सकारात्मक रूप में भारत सरकार को ऐसा अधिकार प्रदान करता है कि वे शरणार्थी पर भारत के भीतर आवा-जाहि पर पाबन्दी लगा सकें, और उसके संबंधों/संघ के अवसर को काबू में कर सकें, और पुन:अवरुद्ध करने की छमता या

शरणार्थी को “वापस” भेज सकें. शरारती सम्बन्धी कन्वेंशन में इन सभी कार्यवाइयों पर पाबन्दी लगाईं गई है.

- शरणार्थी और शरण चाहने वालों की (सुरक्षा) बिल, २००६ [The Refugee and Asylum Seekers (Protection) Bill, 2006] ने अभी तक तो दिन की रौशनी ही नहीं देखी है. लेकिन भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने कई प्रकरणों में यह घोषित किया है कि संविधान के अनुच्छेद २१ के तहत सभी लोगों के जीवन और व्यक्तिगत आज़ादी सुरक्षित हैं. इसलिए भारत की सीमा में रहने वाले प्रवासी जन भी इन अधिकारों से वंचित नहीं किये जा सकते हैं सिर्फ कानून के अंतर्गत बनाई गयी प्रक्रिया के अलावा.

- सिफारिशें
  - शरणार्थियों की स्थिति से सम्बंधित सन १९५१ की कन्वेंशन और १९६७ के प्रोटोकॉल को स्वीकार करें.
  - शरणार्थियों की स्थिति, शरण चाहने वालों को पुन:अवरुद्ध करने से सुरक्षा और शरणार्थियों के साथ व्यवहार को तय करने एक राष्ट्रीय कानूनी ढांचा लागू करें.

घुमंतू, अर्ध-घुमंतू और देनोतिफ़िएद आदिवासी (एन.टी.-डी.एन.टी.आदि)

Nomadic, Semi-nomadic and De-Notified Tribes (NT-DNTs)

1. रेंके आयोग की रपट, २००८ (Renke Commission Report, 2008) के अनुसार, भारत में लगभग १,५०० घुमंतू और अर्ध-घुमंतू और १९८ देनोतिफ़िएद आदिवासी हैं, जो तकरीबन १ करोड़ ५० लाख की जनसख्या हैं. लेकिन भारत का संविधान औपचारिक तौर पर भारत में एन.टी.-डी.एन.टी. समुदायों को मान्यता नहीं देता है, जिसके चलते नीतिगत प्रतिमान पंगु जैसा हो गया है, और इसके आगे उन्हें नागरिक होने के

अधिकारों, सामाजिक सुरक्षा, और सकारात्मक विकास के कारगर कार्यक्रमों स वंचित रखा जाता है.

2. एन.टी.-डी.एन.टी. की मानव अधिकारों की स्थिति और भी भयानक और भी खेदजनक है. पुलिस, नगरीय और राजस्व प्रसाशन, और नगरीय समाज द्वारा उन्हें दिन-प्रति-दिन प्रतारणा दी जाती है. मीडिया द्वारा उनके खिलाफ मुख्य रूप से एक दागी पहचान को बढ़ावा दिया जाता है, खासकर उनकी प्रतिदिन की ख़बरों में जब वे अपराध के बारे में रिपोर्ट देते हैं.

- सिफारिशें:

  - एन.टी.-डी.एन.टी. के गैर-अपराधीकरण प्रक्रिया के लिए हबितुअल ओफ्फेंदरस कानून, १९५२ और प्रेवेन्तिउओइन ऑफ़ बेग्गीं कानून १९५९ को रद्द करिए.
  -
  - एन.टी.-डी.एन.टी. समुदायों को अधिकार देने, ज़मीन और आवास अधिकारों, आजीविका, शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए एक सामाजिक सुरक्षा ढांचा तैयार करना चाहिए. कानून लागू करने वाली येगेंसिओं और राज्य की मशीनरी में चेतना जगाने का काम होना चाहिए. भारत सरकार को एक स्थायी कानूनी संस्था का निर्माण करना चाहिए, एन.टी.-डी.एन.टी. आयोग जैसा, और इसके आलावा निति आयोग और अन्य मानव अधिकार संस्थानों में एक कार्यकारी समूह तैयार करें.

सभा, संघ और अभिव्यक्ति की आजादी

Freedom of Assembly, Association and Expression

1. भारत सरकार नियमित रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १४४ का उपयोग कर शांतिपूर्ण जन-सभाओं को रोकने, विरोध को प्रतिबंधित करने, और जन-आंदोलनों को दबाने का काम करती है. सरकार-विरोधी प्रदर्शन के दौरान अधिकारीगण अत्याधिक बलप्रयोग करते हैं, खासकर द्वन्द/टकराहट बाले इलाकों में जैसे जम्मू और काश्मीर में.

2. सरकार की नियंत्रित करने वाली शासन प्राणाली कॉर्पोरेट सेक्टर की तुलना में नगरीय समाज संगठनों के साथ भेद-भाव करती है. फॉरेन कॉन्ट्रिब्यूशन रेगुलेशन कानून (ऍफ़.सी.आर.ए.) और उसके नियम गैर-सरकारी संगठनों की फंडिंग पर पाबन्दी लगाती है जो असल में संघ बनाने और अभिव्यक्ति की आजादी के उनके अधिकार पर हमला है. सन २०१५ मे शांतिपूर्ण सभा और संघ की आजादी पर संयुक्त राष्ट्रों की विशेष रेपोर्तयूर, मैना किआयी ने ऍफ़.सी.आर.ए. का विश्लेषण कर कहा था कि यह कानून “ आई.सी.सी.पी.आर. के तहत भारत संघ के उत्तरदायित्वों का उल्लंघन करते हैं”. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग इस मुद्दे पर खामोश है.

3. अधिकारीगण कुछ व्यापक-शब्दों वाले कानूनों का सहारा लेते हैं जैसे कि “राजद्रोह”, ऐसे भाषणों के लिए जो सरकारी काम के आलोचक हों, जिनमें सामाजिक मीडिया शामिल है. कुछ अन्य अस्पष्ट शब्दों वाले कानून जैसे कि अपराधिक मानहानि और नफरत फैलाने वाले भाषणों से सम्बंधित कानूनों का इस्तमाल कर ऐसे लोगों को प्रताड़ित और मुकदमा चलाया जाता है जो असहमति जताते हैं, अलोकप्रिय या अल्पसख्यक विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं. पत्रकारों पर हमले बढ़ रहे हैं; खासकर उनपर जो भ्रष्टाचार और सरकार के गलत कामों को उजागर करते हैं.

4. राजनैतिक अशांति के दौरान भारतीय अधिकारीगणों ने मोबाइल इन्टरनेट सेवाओं को पूरे देश में ढप्प करने का हथकंडा अपनाते हैं. सन २०११ में, संयुक्त राष्ट्रों की विशेष रापोर्तयूर, फ्रैंक ला रुए जो मत और अभिवयक्ति की आजादी के अधिकार की सुरक्षा और बढ़ावा देने से सम्बन्ध रखते हैं, ने कहा था कि ऐसा हथकंडा आई.सी.सी.पी.आर. के अनुच्छेद १९ का उल्लंघन है.

सिफारिशें:

- ऍफ़.सी.आर.ये. के उन प्रावधानों को रद्द करें या उनमें संशोधन लायें जो संघ बनाने की आजादी को नियंत्रित करते हैं और भारत के अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार उत्तरदायित्व का उल्लंघन हैं.

- नगरीय समाज के संगठनों के अधिकार को सम्मान देते हुए उन्हें अपने काम के लिए वैध फंडिंग अभादित उपलब्धता प्रदान करें, जिसमें विदेश से संसाधन शामिल हों.

मानव अधिकार रक्षक:

Human Rights Defenders

1. पूरे भारत में मानव अधिकार रक्षकों पर खतरे बिना किसी रोक-टोक के लगातार मंडरा रहे हैं. मानव अधिकार रक्षकों पर संयुक्त साश्त्रों की रेप्पोर्तयूर ने सन २०११ में अपने भारत भ्रमण के दौरान यह इंगित किया था कि “मानव अधिकार रक्षकों को पर अकसर नक्सलवादी (माओवादी), “राज्य का दुश्मान”, “उग्रवादी”, “राष्ट्रद्रोही”, “भूमिगत संगठन के सदस्य” होने का तमगा लगा दिया जाता है” और उनके संघ बनाने और आव-जाही, शांतिपूर्ण सभा, और अभिव्यक्ति की आजादी के अधिकारों पर गैर-कानूनी तौर से पाबन्दी लगा दी जाती है”. मानव अधिकार रक्षक जो द्वन्द/टकराहट के इलाकों में कार्यरत हैं सुरक्षा बलों के दुर्व्यवहार के शिकार हैं, जिसमें गैर-न्यायायिक हत्याएं, यातना और बलात्कार शामिल हैं.

2. एक बहुत ही चौंकाने वाली प्रवृति जो हाल ही में उपजी है जिसमें उन मानव अधिकार रक्षकों को निशाना साध कर मौत के घाट उतारा जा रहा है जो सूचना के अधिकार कानून का इस्तमाल करते हैं, पत्रकार, लेखक, छात्र, फिल्म बन्नने वाले, और वकीलों को जो मानव अधिकार रक्षकों को कानूनी मदद पहुंचाने का काम करते हैं, ऐसे लोगों पर न केवल गैर-राज्य के खलनायकों द्वारा निशाना साध कर धमकियाँ व् शारीरिक हमले किये जा रहे हैं लेकिन उन्हें गैरकानूनी तरह से गिरफ्तार भी किया जा रहा है, A उन्हें बेदखल किया जा रहा है, उनकी विदेश यात्रयों को नियंत्रित किया जा रहा है, यहाँ तक कि राज्य के अधिकारीगणों द्वारा उनकी हत्या भी की जा रही है. पुरातनकाल, औप्रिवेश्काल के कानूनों जैसे कि “राजद्रोह” का इस्तमाल इन मानव अधिकार रक्षकों के खिलाफ किया जा रहा है.

3. आदिवासी मानव अधिकार रक्षक, और ऐसे मनाव अधिकार रक्षक जो प्राकृतिक संसाधनों, ज़मीन, प्रयावरण, व्यापार और मानव अधिकार, जाती के मुद्दे पर कार्यरत हैं, लगातार फर्जी मुकदमों, यातना, हत्याओं, और शांतिपूर्ण विरोध प्रदर्शन के दौरान अत्याधिक बल प्रयोग का सामना कर रहे हैं.

4. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग (एन.एच.आर.सी.) में मानव अधिकार रक्षकों पर राष्ट्रीय फोकल पॉइंट को कोई भी विशेष अधिकार नहीं मिले हैं. जनवरी २०१५ से जो भी २२५ प्रकरण एन.एच.आर.सी. में दर्ज किया गए, उनमें से एक में भी एन.एच.आर.सी. रहत प्रदान न कर सका. नवम्बर २०१५ में संयुक्त राष्ट्रों की आम सभा में मानव अधिकार रक्षकों सम्बंधित प्रस्ताव को अपनाने से भरत ने साफ़ इनकार कर दिया जो मानव अधिकार रक्षकों की सुरक्षा हेतु अलग से घरेलु कानून बनाने के विषय में था.

- **सिफारिशें:**

- मानव अधिकार रक्षकों की सुरक्षा हेतु एक कानून लागू करें जो अंतर्राष्ट्रीय मापदंडो के अनुकूल हो.
- यह सुनिश्चित करें मानव अधिकार रक्षकों पर फोकल पॉइंट को आयोग की पूर्ण सदस्यता प्रदान की जाये, ऐसे अधिकारों के साथ जिनकी सिफारिश संयुक्त राष्ट्रों के मानव अधिकार रक्षकों के विशेष रेप्पोर्तयूर की गयी है.

राष्ट्रीय मानव अधिकार संस्थान:

National Human Rights Institutions

1. भारत में नौ राष्ट्रीय और १८० से अधिक राज्य मानव अधिकार संस्थान कार्यरत हैं जिन्हें मानव अधिकारों की सुरक्षा और उन्हें बढ़ावा देने की ज़िम्मेदारी सौंपी गयी है. इनमें से अधिकाँश पेरिस प्रिंसिपल्स के अनुरूप कानूनी तौर पर और क्रियान्वन के स्तर पर खरे नहीं उतारते हैं, जो दिसम्बर १९९३ में संयुक्त राष्ट्रों की आम सभा में राष्ट्रीय मानव अधिकार संस्थानों के स्तर पर पारित हुए थे. इनमें निहित छमता के बावजूद, यह संस्थान व्यवस्थित व्यवधानों का सामना करते हैं जो नियुक्तियों के ढांचे, बहुलवाद, पारदर्शिता, आदिदेश, और अधिकारों के मामले में इन्हें कारगर तौर पर काम करने में रूकावट पैदा करती हैं.

2. पहली यू.पी.आर. की सिफारिश क्रमांक ३ के तहत, भारत की सरकार ने स्वीकार किया था कि वह वर्तमान में मानव अधिकारों की सुरक्षा हेतु यंत्र-रचना को मज़बूत करेगी, लेकिन दूसरी यू.पी.आर. के दौरान उन टिप्पणियों और सिफारिशों को मंज़ूर नहीं किया जो मानव अधिकारों की सुरक्षा और बढ़ावा देने वाली राष्ट्रीय संस्थानों की अंतर्राष्ट्रीय समन्वयक समिति ने दिए थे, प्रत्यापन की उप-समिति जो २०११ में बनाये गए.

3. प्रत्यापन की उप-समिति ने सिफारिश की थी कि एन.एच.आर.सी. द्वारा प्रोटेक्शन ऑफ़ ह्यूमन राइट्स एक्ट २००६ में संशोधन लाकर उन अनियमिताओं को दूर करने की वकालत करे क्योंकि २००६ का संशोधित कानून सन २०११ में भारत सरकार द्वारा उन प्रतिज्ञाओं को नहीं दर्शाता है जो उसने संयुक्त राष्ट्रों की आम सभा के समक्ष दीं थीं, इसके पहले कि उसने २०११- २०१४ के मानव अधिकार परिषद् के कार्यकाल के लिए अपनी उम्मेदवारी पेश की थी.

- **सिफारिशें:**

- मानव अधिकारों की सुरक्षा कानून, १९९३ को संशोधित करें और उसे पेरिस प्रिंसिपल्स के अनुकूल बनाएं ताकि नियुक्ति के ढांचे की रचना में पारदर्शिता, बहुलवाद, और नगरीय समाज का प्रतिनिधित्व राष्ट्रीय और राज्य मानव अधिकार आयोगों में सुनिश्चित हो सके.
- आई.सी.सी.-एस.सी.ए. द्वारा २०११ में की गयी समीक्षा की टिप्पणियों और सिफारिशों का समर्थन करते हुए उनका अनुपालन करें.
-

संयुक्त राष्ट्रों के मानव अधिकारों के तंत्र के साथ समन्वय:

Collaboration with the UN Human Rights System

1. पहली यू.पी.आर. की सिफारिश क्रमांक ४ और दूसरी यू.पी.आर. की सिफारिश क्रमांक ७० और सन २०११ में अपनी प्रतिज्ञा अनुसार, भारत सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय मनाव अधिकार संस्थानों के साथ अपने रचनात्मक संबंधों को बरकरार रखने के प्रति अपनी कतिबध्धता ज़ाहिर की थी. लेकिन भारत ने अभी तक तमाम मुख्य मनाव अधिकार कोन्वेशानो (प्रतिसंविदाओं) की अभिपुष्टि नहीं की है.

2. संयुक्त राष्ट्रों की संधि संस्थानों के साथ भारत द्वारा रपट देने का रिकॉर्ड भी नगण्य है. सी.आर.सी. और ससे.आर.पी.डी. के तहत भारत के उत्तरदायित्व के अनुकूल रपट देने को झोड्कर, भारत द्वारा पांच से दस वर्षों से रपटें पेश नहीं की गयीं हैं. इनमें से सबसे कुख्यात उदाहरण मनाव अधिकार समिति को रपट न देने का मसला है जो वर्षों से नहीं दी गयी है. भारत ने मानव अधिकार समिति को पिछली बार सन १९९५ में रपट पेश की थी.

विशेष प्रक्रियाएँ:

Special Procedures

१. पहली यू.पी.आर. की सिफारिश क्रमांक १४ और सन २०११ में अपनी प्रतिज्ञा अनुसार, भारत सरकार ने घोषणा की कि वह विशेष प्रक्रियाओं के अधिदेश प्राप्त संस्थानों को विशेष निमंत्रण दे रही है. महिलाओं के खिलाफ हिंसा पर विशेष रेप्पोर्तयूर, रशीदा मानू ने २२ अप्रैल से एक मई २०१३ के बीच भारत भ्रमण किया. तब से अब तक तीन वर्ष गुज़र गए हैं कि उचित आवास पर विशेष रेप्पोर्तयूर, सुश्री लेइलानी फरहा ने भारत भ्रमण अप्रैल २०१६ में किया था.

२. फिलहाल जानकारी के अनुसार, संयुक्त राष्ट्रों द्वारा उनके विशेष प्रक्रियाओं के लिए कम-से-कम १४ अनुरोध, जिनमें पांच पुन:याद दिलाने वाले अनुरोध पत्र शामिल हैं, भारत के विदेश मंत्रालय के समक्ष लंबित हैं. इनके अलावा, सन २०१७ में तीन ऐसी यात्राएं आयोजित हैं, लेकिन उनके लिए कोई तिथि उलब्ध नहीं दी गयी है.

३. संयुक्त राष्ट्रों के महा-सचिव द्वारा मार्च २०१३ में रंग-भेद आधारित भेद-भाव और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा पर एक "दिश्निर्देश नोट" में "स्पष्ट सिफारिश की गहि है कि संयुक्त राष्ट्रों को जाती-आधारित भेद-भाव एंड उससे सम्बंधित रीती-रिवाजों पर ध्यान देने की ज़रुरत है". इसके बावजूद, भारत ने अल्पसंख्यकों के मुद्दे पर विशेष रेप्पर्तयूर, रीता इत्साक की रपट पर आपत्ति दर्शायी जो उन्होनें २८ जनवरी २०१६ को मानव अधिकार परिषद् के समक्ष पेश की थी, यह करकर कि यह रपट "विशेष रेप्पर्तयूर के अधिदेश का उल्लंघन है"

- सिफारिशें:
  - सरकार को विशेष रेप्पोर्तयूरों द्वारा भारत में नियमित भ्रमण सुनिश्चित करना चाहिए, प्राथमिकता के आधार पर, उन अधिदेशों को शामिल करना चाहिए जिनके द्वारा बार-बार पहले से ही आवेदन दिए गए हैं, जिसमें यातना पर विशेष रेप्पोर्तयूर शामिल हैं (दूसरी यू.पी.आर. की सिफारश क्रमांक ६९), जिनका आवेदन सन १९९३ से लंबित है; मनमाने तौर पर हिरासत में रखने पर वोर्किंग ग्रुप; ज़हरीले कूड़े पर विशेष रेप्पोर्तयूर; विषम गरीबी पर विशेष रेप्पोर्तयूर, और न्यायाधीशों और वकीलों की स्वाधीनता पर विशेष रेप्पोर्तयूर.
  - सरकार को संयुक्त राष्ट्रों की संधि संस्थानों को अपने उत्तर्दायित्व के प्रति लगातार सूचित करने में कोई भी कोताही नहीं बरतनी चाहिए.

निष्कर्ष

CONCLUSION

मई, २०१२ में भारत की दूसरी सार्वभौमिक मियादी समीक्षा (यू. पी. आर.) के दौरान, कुल मिलाकर १६९ सिफारिशें भारत को दी गयीं थीं ताकि वह मानव अधिकारों पर अपने उत्तरदायित्व और समर्पण को अच्छी तरह से निभा सके. भारत ने कुछ-एक प्रगतीशील नीति-पहल प्रारंभ कर कुछ प्रगति दिखाई जिनमें कानूनी संशोधन ख़ास कर महिलाओं और बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा हेतु शामिल हैं. लेकिन इसके साथ ही हाशिये पर पड़े लोगों की सुरक्षा के

कानूनों और नीतियों के लागू करने में कमी, ख़ास कर दलितों, आदिवासी समूहों, धार्मिक अल्पसख्यकों ने भारत के सामने मुख्य चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं, की वह भारत में सबसे कमज़ोर वर्गों के मानव अधिकारों को सुनिश्चित करे. सशत्र बलों द्वारा मानव अधिकारों के हनन की रपटें इन इलाकों में जैसे कि जम्मू और काश्मीर, उत्तरी-पूर्वी राज्यों, माओवाद से प्रभावित केन्द्रीय भारत के राज्यों मं, मानव अधिकार रक्षकों पर होने वाले हमले, साथ ही सांप्रदायिक हिंसा की रपटें, अभिव्यक्ति और बोलने की स्वतंत्रा, विरोध करने की आजादी पर लगाम लगाना, पुलिस अत्याचार जिसमें यातना और गैर-न्यायायिक हत्याएं शामिल हैं, पूरे देश में व्याप्त हैं. इस संयुक्त साझेदारों की रपट के माध्यम से, डब्लू.जी.एच.आर. आशा करता है कि सार्वभौमिक मियादी समीक्षा के तीसरे दौर में यू.पी.आर. की सभी सिफारिशों को लागू करने भारत को एक और अधिक सुनियोजित कार्यक्रम लागू करने की आवश्यकता के लिए प्रेरित करेगा, और यू.पी.आर. की आगे की क्रियानवन प्रक्रिया में नगरीय समाज के साथ सकारात्मक तरीके से मिलकर एक न्यायसंगत समाज की संरचना करेगा.